मातृभाषा के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा–आज के समय की जरूरत

डॉ. स्वाति चढ्ढा
सीएसआईआर–एनसीएल, पुणे

प्रायः इस बात को लेकर बहस होती आई है कि प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में ही दी जाए। इस संबंध में विभिन्न बाल मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाविदों, विद्वानों ने बड़े मजबूत तर्क भी रखे हैं कि क्यों मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाना चाहिए। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से ही हम देख रहे हैं कि विभिन्न राज्यों के शिक्षा मंडलों ने इन तर्कों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और आज हालात कुछ ऐसे हो चुके हैं कि लगभग 95 प्रतिशत विद्यालय सिर्फ अंग्रेजी माध्यम से ही शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। विभिन्न राज्यों के क्षेत्रीय भाषा के माध्यम वाले स्कूलों की संख्या घटती चली जा रही है। यह सिद्ध हो चुका है कि मातृभाषा में शिक्षा बालक के उन्मुक्त विकास में ज्यादा कारगर होती है अलग–अलग आर्थिक परिवेश के बालकों में विषय को ग्रहण करने की क्षमता समान नहीं होती। अंग्रेजी में पढ़ाए जाने पर और कठिनाई होती है। जिनका पूरा परिवेश ही अंग्रेजी भाषामय हो, ऐसे परिवार देश में कम ही हैं। मातृभाषा या अपनी भाषा के माध्यम से जब पढ़ाया जाता है तो बालकों के लिए सरल सहज वातावरण पनपता है और वह अच्छे से सीख पाता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर जी ने मातृभाषा को बड़े सम्मान से देखा और कहा कि अपनी भाषा में शिक्षा पाना जन्मसिद्ध अधिकार है। मातृभाषा में शिक्षा दी जाए या नहीं इस तरह की कोई बहस होना ही बेकार है, उन्होंने कहा है कि अपनी मातृभाषा में शिक्षा पाने का जन्मसिद्ध अधिकार भी इस अभागे देश में तर्क और बहस का विषय बना हुआ है। उनकी मान्यता थी कि जिस तरह हमने माँ की गोद में जन्म लिया है, उसी तरह मातृभाषा की गोद में जन्म लिया है, ये दोनों माताएं हमारे लिए सजीव और अपरिहार्य हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर जी समेत तमाम भारतीय महापुरूषों जैसे गांधीजी, विनोबा भावे जी, नेताजी सुभाषाचंद्र बोस इत्यादि ने मातृभाषा की महत्ता को समझा और उसे समझाने का प्रयास भी किया।

गांधीजी तो शिक्षा के माध्यम के लिए मातृभाषा को ही सर्वोत्तम मानते थे। उनका स्पष्ट मत था कि शिक्षा का माध्यम तो प्रत्येक दशा में मातृभाषा ही होनी चाहिए। उनकी इच्छा थी कि भारत के प्रत्येक प्रदेश में शिक्षा का माध्यम उस प्रदेश की भाषा को होना चाहिए। उनका कथन था यदि राष्ट्र के बालक अपनी मातृभाषा में नहीं, अन्य भाषा में शिक्षा पाते हैं, तो यह उनके ऊपर अन्याय समान है। इससे उनका जन्मसिद्ध अधिकार छिन जाता है। विदेशी भाषा से बच्चों पर बेवजह जोर पड़ता है और उनकी सारी मौलिकता नष्ट हो जाती है। इसलिए किसी विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना मैं राष्ट्र का बड़ा दुर्भाग्य मानता हूं। गांधीजी ने इस संबंध में 1909 ई. में ''स्वराज्य'' में अपने विचार प्रकट किए हैं। उनके अनुसार ''हजारों व्यक्तियों को अंग्रेजी सिखलाना उन्हें गुलाम बनाना है।'' गांधी जी विदेशी माध्यम के कटु विरोधी थे। उनका मानना था कि विदेशी माध्यम बच्चों पर अनावश्यक दबाव डालने रटने और नकल करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है तथा उनमें मौलिकता का अभाव पैदा करता है। यह देश के बच्चों को अपने ही घर में विदेशी बना देता है। उनका कथन था कि ''यदि मुझे कुछ समय के लिए निरंकुश बना दिया जाए तो मैं विदेशी माध्यम को तुरन्त बन्द कर दूंगा।'' गांधी जी के अनुसार विदेशी माध्यम का रोग बिना किसी देरी के तुरन्त रोक देना चाहिए। उनका मत था कि मातृभाषा का स्थान कोई दूसरी भाषा नहीं ले सकती। उनके अनुसार, ''गाय का दूध भी मां का दूध नहीं हो सकता।''

देश के विभिन्न प्रदेशों का भ्रमण करने के दौरान भी गांधी जी हर अवसर पर शिक्षा में मातृभाषा के महत्व को उजागर करने का अभियान चलाते रहे। 15 अक्टूबर 1917 को बिहार के भागलपुर शहर में छात्रों के एक सम्मेलन में भाषण करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा–''मातृभाषा

का अनादर मां के अनादर के बराबर है। जो मातृभाषा का अपमान करता है, वह स्वदेश भक्त कहलाने लायक नहीं है। बहुत से लोग ऐसा कहते सुने जाते हैं कि 'हमारी भाषा में ऐसे शब्द नहीं जिनमें हमारे ऊंचे विचार प्रकट किये जा सकें। किन्तु यह कोई भाषा का दोष नहीं। भाषा को बनाना और बढ़ाना हमारा अपना ही कर्तव्य है। एक समय ऐसा था जब अंग्रेजी भाषा की भी यही हालत थी। अंग्रेजी का विकास इसलिए हुआ कि अंग्रेज आगे बढ़े और उन्होंने भाषा की उन्नति की। यदि हम मातृभाषा की उन्नति नहीं कर सके और हमारा यह सिद्धान्त रहे कि अंग्रेजी के जरिये ही हम अपने ऊंचे विचार प्रकट कर सकते हैं और उनका विकास कर सकते हैं, तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हम सदा के लिए गुलाम बने रहेंगे। जब तक हमारी मातृभाषा में हमारे सारे विचार प्रकट करने की शक्ति नहीं आ जाती और जब तक वैज्ञानिक विषय मातृभाषा में नहीं समझाये जा सकते, तब तक राष्ट्र को नया ज्ञान नहीं मिल सकेगा।''

महान वैज्ञानिक एवं हमारे पूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम ने स्वयं के अनुभव के आधार पर कहा है, ''मैं अच्छा वैज्ञानिक इसलिए बना, क्योंकि मैंने गणित और विज्ञान की शिक्षा मातृभाषा में प्राप्त की।'' अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई में अधिक मेहनत करनी पड़ती है। मेडिकल या इंजीनियरिंग पढ़ने हेतु पहले अंग्रेजी सीखनी पड़ती है। पंडित मदन मोहन मालवीय अंग्रेजी के ज्ञाता थे। इसके बावजूद उन्होंने कहा था कि मैं 60 वर्ष से अंग्रेजी का इस्तेमाल करता आ रहा हूं, परन्तु बोलने में हिन्दी जितनी सहजता उसमें नहीं आ पाती। यह बात तो स्पष्ट है कि मातृभाषा सीखने, समझने और ज्ञान की प्राप्ति में सरल है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के शिक्षा विज्ञान और संस्कृति संगठन (यूनेस्को) ने भी शिक्षा में मातृभाषा और स्थानीय भाषाओं के उपयोग को महत्व प्रदान हुए कहा है कि ''यह स्वतः सिद्ध है कि बच्चे के लिए शिक्षा का सबसे उत्तम माध्यम उसकी मातृभाषा है। मनोवैज्ञानिक आधार पर यह सार्थक चिन्हों की ऐसी प्रणाली है जो अभिव्यक्ति और समझ के लिए उसके मस्तिष्क में स्वयंचालक के रूप में काम करती है, उसके साथ एकात्मक होने का साधन है, शैक्षिक आधार पर वह मातृभाषा के माध्यम से किसी अन्य माध्यम की अपेक्षा तेजी से सीखता है।'' (यूनेस्को 1953–11)

अंग्रेजी भाषा सीखने में कोई बुराई नहीं है, भाषा सीखना अच्छी बात है और गुणकारी भी है। भाषा हमें एक नये संसार में प्रवेश कराती है लेकिन मातृभाषा या जनभाषा की उपेक्षा कर शिक्षा के माध्यम से उसे हटाकर पराई भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जा रही है और जिस तरह के भाषा–संस्कार डाले जा रहे हैं, वह खतरनाक है। बालक न अंग्रेजी जान पा रहा है न मातृभाषा। अंग्रेजी से कोई विरोध नहीं है, वह जरूर सिखाई जानी चाहिए लेकिन सिर्फ एक भाषा के रूप में, जब कोई विदेशी भाषा हमारी शिक्षा का माध्यम हो जाती है, तो सारी समस्याएं वहीं से शुरू हो जाती हैं। शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रारंभिक शिक्षा किसी विदेशी भाषा में ग्रहण करने पर व्यक्ति अपने परिवेश, परम्परा, संस्कृति व जीवन मूल्यों से दूर हो जाता है और अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान, शास्त्र, साहित्य आदि से दूर होकर अपनी पहचान खो देता है, जबकि शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि वह हमारी संस्कृति, सभ्यता को परिमार्जित कर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचा कर देश के स्वाभिमान को प्राचीन इतिहास से भी ऊंचा बनाए। भाषा और संस्कृति केवल एक भावात्मक विषय नहीं है, बल्कि वर्तमान युग में किसी भी देश की शिक्षा, ज्ञान–विज्ञान और तकनीक का विकास वहां की मातृभाषाओं या जनभाषाओं के विकास के साथ जुड़ा है। किसी भी भाषा का विकास वहां की भाषागत नीतियों के साथ और उस भाषा को बोलने वालों की भाषागत चेतना पर निर्भर करता है।

प्रायः आजकल सुनने में मिलता है कि अंग्रेजी माध्यम के कुछ विद्यालयों में विद्यालय परिसर में हन्दी या मातृभाषा में बात करते पाए जाने पर दंडित किया जाता है। कुछ विद्यालयों में तो माता–पिता की शैक्षणिक योग्यता को बच्चों के प्रवेश का आधार बनाया जाता है, जो कि एकदम गलत है। हम सब भारतीयों को यह समझने की जरूरत है कि शिक्षा के अधिकार का सवाल

मातृभाषा में शिक्षा के साथ जुड़ा है। अपनी भाषा में शिक्षा प्राप्त करना बच्चे का अधिकार है, उस पर दूसरी भाषा लाद देना उसके स्वाभाविक विकास में बाधा डालना भी है। मातृभाषा में शिक्षण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक है।

हमारे शिक्षा शास्त्रियों और तमाम विद्वानों को इस पर मनन करने की गहन आवश्यकता है कि आखिर क्या बात है कि शिक्षा और ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में केवल वही देश आगे जा रहे हैं जहां शिक्षा मातृभाषा में दी जा रही हैं। जर्मनी, फ्रांस, इजराइल, चीन, जापान, कोरिया, रूस, जैसे देश अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा के बिना हमसे कहीं आगे हैं। वे इसीलिए आगे हैं कि उन्होंने अपनी शिक्षा को विदेशी–भाषा–रोग से ग्रस्त नहीं होने दिया। यहां तक कि अमेरिका, कनाडा, न्यूजीलैंड जैसे अंग्रेजी भाषी देशों में भी बच्चे को उसकी मातृभाषा में स्कूली शिक्षा देने की पूरी कोशिश की जाती है। इन देशों में लाखों ऐसे स्कूल हैं जिनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी नहीं है। अमेरिका के शहर बोस्टन की एक मिसाल तो आंखें खोलने वाली है। वहां एक स्कूल में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी न होकर उस क्षेत्र के अफ्रीकी मूल के निवासियों की स्थानीय भाषा थी। लेकिन उन्होंने प्रयोग के तौर पर स्कूल की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी कर दिया। दो–तीन साल में ही वहां ऐसे नतीजे सामने आए कि उस स्कूल की शिक्षा फिर से स्थानीय भाषा में कर दी गई।

दुनिया भर के समस्त शिक्षाविदों के साथ–साथ शिक्षा पर शोध करने वाली एनसीईआरटी के अनुसार भी बच्चों के सीखने का सर्वोत्तम माध्यम बच्चे के परिवेश की भाषा ही है। संविधान का अनुच्छेद 350 भी प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की व्यवस्था की बात करता है। पर इसके बावजूद गली–गली में इंग्लिश मीडियम स्कूल खुल रहे हैं और सर्वत्र अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा को ही बढ़ावा दिया जा रहा है। हमारे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी माता पिता को स्कूली शिक्षा माध्यम को चुनने के फैसले को देने वाले निर्णय में माना कि बच्चे के सीखने का सर्वोत्तम माध्यम मातृभाषा ही है। ये रोजगार के अवसारों में अंग्रेजी की अनिवार्यता ही है जिसने हर एक को अंग्रेजी में पढ़ने के लिए मजबूर किया है। हमारे देश के संविधान निर्माताओं ने अंग्रेजी को एक अल्प अवधि के लिए ही लागू किया था। उन्हें अनुमान था कि संविधान लागू होने के 15 वर्ष के अन्दर हिन्दी देश के सभी राज्यों में स्वीकार कर ली जाएगी और फिर देश में काम काज की भाषा अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी हो जाएगी, किंतु कुछ परिस्थितियों के कारण हिन्दी कामकाज की अधिकारिक भाषा नहीं बन पायी और आज व्यवस्था ही ऐसी बन गई है कि प्रायः अधिकांश अभिभावक अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में ही डालना पसंद कर रहे हैं। अभिभावकों की भी मजबूरी यह है कि हिन्दी माध्यम या क्षेत्रीय माध्यम के अच्छे स्कूल बचे ही कहां है। साथ ही सवाल यह भी है कि इस इंग्लिश मीडियम शिक्षा व्यवस्था में बच्चे कुछ सीख भी पाते हैं क्या? शिक्षा का अर्थ मनुष्य की चेतना को जागृत कर ज्ञान को व्यावहारिक बनाना है। वही हमारे बच्चे बिना व्यावहारिक अर्थ समझे रटते चले जाते हैं वे रट–रट कर छोटी कक्षा से बड़ी कक्षा तक पास कर जाते हैं। पर मौलिक ज्ञान सृजन नहीं कर पाते। यह अंग्रेजी माध्यम व्यवस्था का ही परिणाम है कि हमारे विद्यार्थियों की पढ़ने की रूचि पाठ्यपुस्तक तक ही सिमट कर रह गयी है। हमारे बच्चों ने 'रटने' को ही 'ज्ञान' समझ लिया है और 'अंग्रेजी बोलने की योग्यता को (इंग्लिश स्पीकिंग)' को ही 'शिक्षा'। इसका ही परिणाम है कि हमारे देश में प्रतिभा होने के बावजूद हमसे छोटे–छोटे देश हमसे ज्यादा नोबल पुरस्कार ले जाते हैं और हम उनसे अत्यंत पीछे हैं।

आज समय की मांग यही है कि हमारे शिक्षाविद् और विद्वान इस तथ्य पर गंभीरता से विचार करें कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या जनभाषा ही होना चाहिए, क्योंकि भाषा केवल सीखने का माध्यम ही नहीं, संस्कृति और सभ्यता की भी वाहक होती है।